



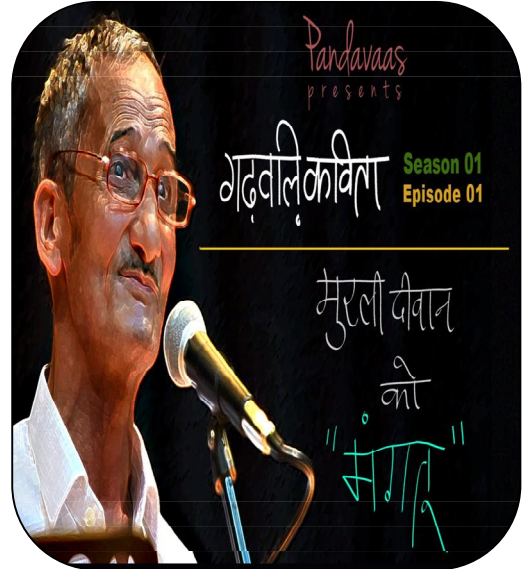
## गढ़वाल में खुदेड़ गीतों के आरम्भ की परिस्थिति एवं विकास

**Mohan Singh**  
Lecturer Hindi.

### प्रस्तावना :-

गीत एक विश्वव्यापी विद्या है। गीत पुरुष भी गाते हैं, किन्तु वादियों का गीतों पर विशेष अधिकार है। गढ़वाल की भूमि देव भूमि कही जाती है। यहाँ आध्यात्मवादी लोगों के साथ ही ऐसे मनुष्यों ने भी आश्रय पाया है, जो विदेशियों से पराजित हो गये थे। गढ़वाल जनपद के लोकगीत इन सभी विचारधाराओं को अभिव्यक्ति देने वाले हैं। इन लोकगीतों में गढ़वाल की भूख, रोजगार हेतु पलायन, गरीबी, अंधविश्वास, भूत-पिशाच, अतृप्ति, असन्तोष, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, मायके की याद, ससुराल गई बेटे के दुःखी जीवन, सासू के द्वारा किया गया कठोर व्यवहार इत्यादि का स्पष्ट चित्रण झलकता है। गढ़वाली योद्धा अपना घर परिवार त्यागकर राजा और गढ़पतियों की सेवा में रहे हैं। उन्होंने प्रेम भी किया और प्रेम के लिए युद्ध भी किए। इस दशा में लोक मानस की तड़प, सासू द्वारा बहू का उत्पीड़न, मायके की याद की विवशता ने खुदेड़ लोग-गीतों का आकार ग्रहण कर लिया। गढ़वाल जनपद की उन बहुओं और बेटियों के मानसिक घुटन को इन गीतों में वाणी मिली है जो अपने माँ-बाप, भाई-बहिनों तथा अपनी जन्मभूमि से दूर रहती हैं। इनमें बारह महिनो की बारह रस्मों, छः ऋतुओं की मदकता और भाई-बहिन तथा माँ-बाप की ममता के भाव होते हैं। गढ़वाल में खुदेड़ गीतों का उद्भव यहाँ के पुरुष के रोजगार हेतु शहर के लिए पलायन करने, ससुराल गई बेटे के साथ सासू द्वारा किया गया कठोर व्यवहार तथा अपने मायके की अत्यधिक याद आने के कारण हुआ है यह इस शोध साहित्यिक लेख का यह अति महत्वपूर्ण भाग है जिसका आगे विस्तार पूर्वक अध्ययन किया जाएगा।

शोध विवच्य शीर्षक का विवरण कुछ इस प्रकार है  
गढ़वाल में खुदेड़ गीतों के आरम्भ की परिस्थिति एवं विकास  
गढ़वाल का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय :-



खण्डः पञ्च हिमालयस्य कथिता  
नेपालकूर्माचलौ।  
केदारोऽथ जलंधरोऽथ रूचिरः  
कश्मीरसंज्ञोऽन्तिमः॥

अर्थात् पहला खण्ड नेपाल प्रदेश, दूसरा खण्ड कूर्माचल(कुमाऊँ) तीसरा खण्ड केदारखण्ड (गढ़वाल) चौथा खण्ड जालंधर अर्थात् पंजाब का पर्वतीय भाग और पाँचवा खण्ड कश्मीर है। इन पाँच खण्डों में से केदारखण्ड अब गढ़वाल के नाम से विख्यात है और पूराणों में इस देश का नाम 'हिमालय' या 'केदारखण्ड' के नाम से पाया जाता है। इसका क्रम हरिद्वार से प्रारम्भ होता है। 'गढ़वाल' शब्द योगरूढ़ि है, अर्थात् 'गढ़वाला', 'वाला' प्रत्यय है, जिससे गढ़वाल शब्द यौगिक हुआ है। 'गढ़' शब्द उन पहाड़ी किलों का बोधक है जो किले पर्वतों की चोटियों पर अधिकता से पाये जाते हैं। किले पूर्वकाल में छोटे-छोटे ठाकुरी

राजाओं, सरदारों और थोकदारों के थे। ये ऊँचे-ऊँचे टीले गढ़ कहलाते थे। इनकी प्रमुख संख्या 52 (बावन) थी। इन 52 गढ़ों के अतिरिक्त और भी छोटे-बड़े गढ़ अधिक संख्या में पाये जाते थे। जिनको कहा जाता था कि सरदार, थोकदार और धनी लोगों के अधीन थे। ऐसे लोग भी उस काल की स्थिति के अनुकूल अपने प्राण और धन की रक्षा के लिए अपने घर ऐसे ही सुरक्षित स्थानों पर बनाया करते थे। इन बावन बड़ों के सरदारों की राज्य स्थिति के विषय में जो कुछ मालूम हुआ है वह इस प्रकार से है कि यह सब 52 सरदार स्वतंत्र राज्य करते थे। कोई किसी के अधीन नहीं था। इसी से उनके बीच प्रायः लड़ाई झगड़ों की छेड़-छाड़ बनी रहती थी।

उन राजाओं और सरदारों के राज्य विभागों के नाम भी पृथक्-पृथक् थे, जो अब परगनों और पट्टियों के नाम से विख्यात है। जब पँवार वंशाज महाराजा अजयपाल ने गढ़वाल के सब ठाकुरी राजाओं और सरदारों को विजय कर उनके राज्यों को एक साथ मिलाकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया, तब इस प्रदेश का नाम अधिक गढ़ होने के कारण 'गढ़वाल' रखा गया। गढ़वाल नाम इस देश का सन् 1500 ई० से 1515 ई० के बीच रखा जाना पाया जाता है। तब से यह विस्तारित क्षेत्र गढ़वाल नाम से प्रसिद्ध है। गढ़ वह स्थान होता था जो किसी ऊँचे टीले पर सुरक्षा के दृष्टिकोण से राजाओं के द्वारा बनवाया जाता था। प्रायः गढ़ चढ़ने के लिए एक ही रास्ता रखा जाता था जिससे दुश्मनों के आक्रमण का मुकाबला किया जा सके। पँवार वंशीय राजा अजयपाल के शासन काल से गढ़वाल में पाल वंशीय राजाओं का राज रहा और इस वंश के 54वें राजा प्रद्युम्नशाह ने सन् 1797 ई० से 1804 ई० तक गढ़वाल नरेश प्रद्युम्नशाह देहरादून के खुड़बुड़ा नामक स्थान पर गोरखा सेना के हाथों वीरगति को प्राप्त हुए और गढ़वाल पर गोरखाओं का शासन स्थापित हो गया। गोरखाओं से युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त होने के बाद उसके पुत्र सुदर्शन शाह ने कम्पनी सरकार से सहायता प्राप्त कर गोरखाओं को पराजित किया और गढ़वाल राज्य पर पुनः सन् 1815 में गढ़ नरेश सुदर्शन शाह का अधिपत्य स्थापित हो गया।

### गढ़वाल-भूमि की उल्लासोन्मुख अभिव्यक्ति में गढ़वाली लोक गीत एवं लोन्त्यात्मक गीत

गढ़वाल की मखमली धरती के लोगों का जीवन हिमालयन्सा उच्च और गंगा-यमुना की पवित्र जल-धाराओं की तरह निर्मल है। हिमालय की गोद में अपने ही खेतों, कूलों, धारों, नदियों, वन-पर्वतों, फूलों की घाटियों, घुघुती, कपफू और मुनाल आदि-आदि पशु-पक्षियों में घुल-मिलकर यहाँ का मानव युगों-युगों से नाचता-गाता रहा है। हिमालयी प्रकृति में नित-नवीनता रहती है, उस नवता की रमणीयता में वहाँ का मानव नाच-गाकर अपना जीवन उमंग के साथ अनेक कठिनाईयों के बावजूद भी हँस-हँसकर व्यतीत कर देता है। गढ़वाल की धरती गीतमय है। उल्लास के साथ जीना यहाँ की विशेषता है। डॉ० गोविन्द चातक ने ठीक ही लिखा है—

'गढ़वाल का हृदय संगीतमय है'। यहाँ की हरी-भरी धरती गाती है, बुर्राँश के फूलों के सिन्दूरी सोहाग से रँगी ड़ाँडी काँठियाँ (पर्वतश्रृंखलाएँ) गाती है।

गढ़वाल में लोकगीतों के प्रसिद्ध व्याख्याता डॉ० गोविन्द चातक ने 'गढ़वाली लोकगीत' के प्रारम्भिक शब्द में लिखा है। 'गढ़वाल कई स्वरों में गाता है। वहाँ के जागर, पँवाड़े, बाजूबन्द, खुदेड़ गीत लिखित साहित्य की भक्ति, वीर श्रृंगार और करुणा रस की परम्पराओं से इन्हें अलंकृत करती है। खुदेड़ गीतों में नारी हृदय की करुणा की काव्यश्री है। झुमैलो और चौफुला में प्रकृति का वैभव बिखरा है और जागर देवी-देवताओं की अर्चना और स्तुति के गीत हैं। साथ ही उत्तराखण्ड में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोक गीतों, लोक नृत्यों का डॉ० शिवा नन्द नौटियाल ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत' में निम्नलिखित वर्गीकरण किया है।

1. मंगल गीत — (अ). आवाहन पूजागीत (ब). पूजागीत (स). विवाह के मांगल गीत
2. जगर — नृसिंह, नागर्जा (कृष्ण), देवी, हन्त्या, पांडवों के जीवन के जागर गीत, भैरों आदि जागर।
3. पँवाड़े — वीरगीत (ऐतिहासिक व अनैतिहासिक वीरगीत)
4. तंत्र-मंत्र के गीत
5. थड्या गीत
6. चौफुला गीत

7. खुदेड़ गीत
8. बरामासा गीत
9. चौमासा गीत
10. कुलाचार गीत
11. पसारा गीत
12. बसन्ती गीत
13. होरी गीत
14. बाजूबन्द गीत
15. लामण गीत
16. छोपती गीत
17. लोरी गीत
18. पटखाई में छूड़ा गीत
19. नौन्याली गीत
20. दूड़ा गीत
21. सामयिक गीत

श्री मोहन लाल बाबुलकर द्वारा गढ़वाली लोकगीतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है।

1. संस्कारों के गीत
2. देवी—देवता स्तुति—पूजा त्योहार गीत
3. खुदेड़ गीत
4. ऋतु संबंधी (विरह) गीत
5. समूहिक गेय गीत
6. तंत्र—मंत्र के गीत
7. लघु गीत
8. जातियों के गीत

**खुदेड़ गीत** — खुदेड़ एक सामाजिक गीत है तथा इसका संबंध ऋतु गीतों से है खुद शब्द में एड प्रत्यय लगने से बने खुदेड़ शब्द का अर्थ क्षुब्ध कर देने वाली उत्कंठा है। इसकी व्युत्पत्ति क्षुब्ध और क्षुधा (भूख) शब्द से भी मानी जाती है। गढ़वाली में उत्कंठा को खुद कहते हैं। खुदेड़ गीत वियोग से संबंधित भी होते हैं। इन गीतों में उद्दीपन के रूप में प्राकृतिक शोभा का भी वर्णन रहता है। इस गीत के अत्तराद्ध में कठोरताओं और विवशताओं के मध्य ससुराल में दुःख पूर्ण जीवन का वर्णन रहता है।

डॉ गोविन्द चातक ने इसका परिचय देते हुए इसका उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं —

“ पर्वतीय प्रदेशों में निरन्तर श्रम की स्थिति, पति के दुर्व्यहार, आर्थिक अभाव, नारी के प्रति हीनता के भाव और सासू की अधिकार—भावना के कारण नारी का जीवन भावनाओं से परिपूर्ण होता है। फिर जहाँ पति ममत्वहीन और सास अधिकार की कटु गुरूआनी हो, वहाँ कारागार के अतिरिक्त क्या हो सकता है? यहाँ अमानवी हिंसा की और कोई कल्पना करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। न बर्छियों की आवश्यकता है, न तीर—तलवारों की, क्योंकि परिवार के तीखे बोल स्वतः उनका काम करते हैं। कान पकड़वाकर, मूँड़ मूँड़वाकर जैसे कभी कनफटे जोगी अपने चेलों से कठोर साधना करवाते थे, उससे कम यातना उन्हें सास नहीं देती है।

डॉ गोविन्द चातक ने इसका ससुराल में ससुराली जनों के अत्याचार सहन करती किसी सताई हुई वधू के रूप में खुदेड़ गीत का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

मैं छऊँ मांजी निरदया नगरी, लोक बोल देंवा मारी, नौँ देंदा धरी।  
 बरछियों की मार देंदा, तरवारियों का देंदा घाऊ।  
 परदेशी लोक मांजी मूंडली मूंडला, कंबूडी फाड़ला,  
 जौंकी भाख्या नी बीगेंदी मांजी, तौकी गाली कनके सहेली?  
 जौंकूँ बाटो नी हिटेंदों मांजी, तौका पैरु कनके सेयलू।

अर्थात है माँ ! “मैं निर्दय लोगों की नगरी में हूँ। लोग कड़वे बोल बोलते हैं, बुरा नाम रखते हैं, बरछियों की मार मारते हैं और तलवारों के घाव लगाते हैं। अनजाने—अनपहचाने वे लोग मूँड़ मूँड़ते हैं, कान फाड़ते हैं। जिनकी भाषा ही मेरी समझ में नहीं आती है, उनकी गालियाँ मैं कैसे सहूँ? जिनकी राह मुझे चलना ही नहीं आता, मैं उनके चरणों में कैसे सोऊँ।”

गढ़वाल एक पर्वतीय प्रदेश है यहाँ प्राकृतिक शोभ वर्ष भी छिटकी रहती है। इस प्रदेश में चाहे बेकारी, गरीबी, अंधविश्वास कितने ही अधिक हों किन्तु प्राकृतिक शोभा गढ़वाल के ग्रामीण आँचल के सभी घावों पर मरहम बन जाती है। गढ़वाली खुदेड़ गीतों का उद्भव एवं विकास यहाँ के भौगोलिक परिवेश के द्वारा हुआ है। गढ़वाल के पर्वतीय भागों में सीढ़ीदार खेत होते हैं जिनमें कृषि कार्य किया जाता है, उपजाऊ की दृष्टि से यह खेत न्यूनतम पैदावार देते हैं।

गढ़वाल की महिला एवं पुरुष इन सीढ़ीदार खेतों में मेहनत वर्ष भर कृषि कार्य करते थे। यह खेत पूर्णतः सिचाई हेतु वर्षा पर निर्भर होते थे। वर्षा समय पर न होने के कारण एवं सिचाई की कोई व्यवस्था न होने के कारण इन खेतों में अन्न की बहुत कम पैदावार होती थी। जिससे की दन लोगों का वर्ष भर का भरण—पोषण नहीं हो पाता था पहाड़ में रोजगार के साधन भी नहीं थे। परिवार के सामने आजीविका का संकट पैदा होने के कारण यहाँ के पुरुष पहाड़ को छोड़कर रोगगार हेतु मैदानी भागों एवं शहरों के लिए पलायन करते थे। लम्बे समय तक घर से दूर रहकर पुरुष एवं महिला विरह की यातना सहन करते थे। पति की विरह पीड़ा से महिला अत्यधिक व्यथित हो जाती थी घर के कार्य एवं परिवार के बोझ के साथ—साथ उसे पति की याद अत्यधिक सताती थी जिसे महिला खेतों में काम करते हुए गीतों के रूप में अभिव्यक्ति करती थी तथा पति की याद में आँसू बहाती थी यही वियोग पर आधारित गीत खुदेड़ गीत कहलाये। इन खुदेड़ गीतों में वियोग की पीड़ा एवं याद का वर्णन किया जाता था। ऐसी ही वियोग की परिस्थितियों के कारण पहाड़ में खुदेड़ गीतों का उद्भव हुआ। प्राचीन काल में आज के समान आवागमन के सुरक्षित और सुविधाजनक वाहन एवं साधन उपलब्ध नहीं थे। ऊँचे—नीचे पर्वतों पर तो सुगम मार्गों का अभाव था। परदेश में नौकरी करने वाले पुरुष वर्षा ऋतु आरम्भ होने से पहले ही अपने घर लौट आते थे जो लोग वर्षा आरम्भ होने से पहले नहीं लौटते थे, वे वर्षा ऋतु बीतने पर ही घर आ पाते थे। वर्षा ऋतु बहुत पहले आ चुकी है। अब तो सावन का महीना चल रहा है। रात—दिन वर्षा हो रही है। वियोगिनी पत्नी अपने पति को कल्पना में सम्बोधित करती हुई लोकगीतों के माध्यम से भाव व्यक्त करती है जिसे खुदेड़ गीत कहा जाता था यही खुदेड़ गीत के जन्म का कारण था ऐसे गीतों में महिला अपने विरह के गीतों को अभिव्यक्त करती है।

डांडू कुरेड़ी लौखी पति जी, होइगे अंध्याघोर।  
 सौँण को मैना ऐगे पति जी, धौसी भरैगी जोर।।  
 धरती हरी होइनै पति जी, पर मैं हंवेगी आदा।  
 मैं बैण्यों की कम खुद पति जी, छौ तुम्हारी सीतारामी,  
 डांडू देखौ रूवै औँदी पतिजी, मैं न आख्या माथामी।

लोक छम—छम हिटिक पति जी, मैं हिठदूँ खाती ।  
 मैं घासि लाक ग्युँ पतिजी! नंगी पाखड़्यों व्याली ।  
 तुमन कना डला जि फरकैन पतिजी, मेरी ई छाती,  
 घर अवा झटकैक पतिजी, लम्बी हवैगी राती ।

“हे पतिदेव ! पर्वतों पर बादल उमड़े, अंधकार छा गया । सावन मास आया है, धवली नदी पानी से पुरजोर भर गयी है । मुझे भाई—बहिनों की तो कम याद आती है पर तुम्हारी ज्यादा याद आती है । तुम्हारे लिए मैंने मन को रोक रखा है । मैं राम की सीता हूँ । पर्वत शिखरों को देखकर रोना आता है । पर उसे मैं आँखों में थामें रखती हूँ । लोग इतराते हुए चलते हैं, मैं तो खाली ही चलती हूँ । कल नंगी बाँहे लेकर ही घास काटने गयी थी । इस छाती पर कैसे पत्थर डाले हैं मैंने, शीघ्र आओ, पतिजी रातें भी लम्बी होने लगी है ।”?

बेटी ससुराल में अपने मायके की स्मृति में व्याकुल होकर गीत गाती है । यह पहाड़ की बेटियों के घुटन भरें एवं शोषित जीवन के गीत होते थे इन गीतों में सासू द्वारा किया गया उत्पीडन एवं कठोर आचरण का वर्णन होता था । बेटी को सास के द्वारा दी गई यातनाओं से उसका हृदय व्यथित हो जाता था उसे कोई ससुराल में स्नेह करने वाला नहीं होता था । उसका पति रोजगार हेतु वर्षों तक शहरों में ही रहता था इस कारण वह अपने रूग्ध कण्ठ से हर दम मायके की याद में खोई रहती थी । तथा उसे सास द्वारा दी गई यातनाओं को तथा मायके की याद को लोक गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती थी । इन्हीं विषम परिस्थितियों के कारण वह गीत गाती थी यह गीत विरह गीत होते थे जिसे मायके की याद एवं खुद के कारण खुदेड़ गीत कहा गया । इस भाव अभिव्यक्ति एवं सास के शोषण के कारण भी खुदेड़ गीतों का उद्भव एवं विकास हुआ । बेटी का ससुराल अत्यधिक दूर होने के कारण एवं सास का बहू को अत्यधिक लम्बे समय तक मायके न भेजने से भी बेटी के द्वारा मायके की याद में लोक गीत गाये जाते थे । जो मायके की याद का स्मरण कराते थे । लोक साहित्य की खुदेड़ लोक गीत एवं अति महत्व पूर्ण विद्या है जो पहाड़ के जन जीवन की एक पहिचान है ।

बेटी के द्वारा मार्मिक शब्दों का प्रयोग कर लोक गीत के माध्यम से अपने मायके की याद निम्न पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती है —

“ हे ऊँची डांड्युँ तुम नीसी हवै जावा ।  
 घणी कुलायों तुम छांति होवा ।।  
 मेकू लगी छ खुद मैतुड़ा की ।  
 बाबाजी को देश देखण देवा ।।”

ऊलरि मैनों की ब्यै । ऋतु बौड़ि ऐगे ।  
 हैरि द्यैन डाँडि ब्यै । फूल फूलि गैने ।।  
 घूगती घुरिल ब्यै । डाल्युँ—डाल्युँ माँजअ ।  
 मैतुड़ा बुललि ब्यै । बोर्ड होलि जाँकि ।  
 मेरि जीकूड़ी म ब्यै । क्यूड़ी सी लौंकी ।

लाल बअणी होलि ब्यै । काफुलूँ कि डाली ।  
 लोग खान्दा होला ब्यै । लूण रालि राली ।  
 गौंकि दीदी—भूलि ब्यै । जँगुलू मा जाली ।  
 कंडि भोरि भोरि ब्यै । हींसर बिराली ।  
 बाडुलि लागलि ब्यै । आग भमराली ।  
 बोई बोदि होली ब्यै । मैत आलि—आली ।

याद औंद मीतें ब्यै । अपड़ा भुलौंकि ।  
मेरी जीकूडी म ब्यै । क्यूड़ी सि लौंकी ।

स्वामिजी हमेशा ब्यै । परदेश रैने ।  
साथ का दगड़या ब्यै । घअर आइ गैने ।  
ऊँकू प्यारो वहैगि ब्यै । विदेशू को वासअ ।  
बाठा देखी—देखी ब्यै । गैनि दिन—मासअ ।  
बाडुलि लागलि ब्यै । आग भमराली ।  
या त घअर आला ब्यै । या त चिठि आली ।

“ स्पष्ट है कि मध्य हिमालय में लोकगीतों की परंपरा में जितने विवध आयाम हैं, उतना ही सामाजिक लगाव और अनुभूति की गहराई भी है। उनके केन्द्र में नारी, उसकी संवेदना और अनुभूति है। तेल की कढ़ाही में जैसे सब्जी पकाई जाती है, उसी तरह उसका भाग्य भी है वैसी ही उसकी सास है —

‘तेल कढ़ाही जनु लायो साग,  
तनी मेरी सासु ब्यै,  
तनी मेरो मरो भाग ।’

आत्मिक क्षुधा में विहल मायके की स्मृति में डूबी हुई विवाहिताओं का हृदय विदारक गीत है। इन गीतों के साथ मायके की ओर से आने वाले पक्षी को विवाहिताएँ अपना सन्देश वाहक बनाती हैं और अपनी विरह पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं। पर्वतों की चोटियों में या हरे-भरे फूलों से लदे हुए पहाड़ी ढलानों पर प्रायः खुदेड़ गीतों को विवाहिताओं के द्वारा गाया जाता था इससे उन्हें अपनी आत्मा की विरह रूपी वेदना को अभिव्यक्त करने में क्षणिक शांति प्राप्त होती थी।

पहाड़ में नारी का जीवन बहुत कष्टमय होता है। ससुराल का कटु व्यवहार उस समय और भी नरक के समान हो जाता है जब विवाहिता का पति परदेश में हो। पहाड़ों से दूर रोजी-रोटी के लिए नवयुवकों को सेना में या मैदानी क्षेत्रों के कई स्थानों में जाना पड़ता है। ऐसी दशा में विछोह होना स्वाभाविक है। अभाव एवं प्रताड़ना-भरे जीवन में जहाँ वियोग का दारुण दुःख भी हो तो उस नारी के हृदय की व्यथा अकेले पर्वतीय अंचल में खुदेड़ गीतों के रूप में पुस्फुटित होती है। वह खुले आकाश में स्वच्छन्द बहने वाले पवन को अपनी विवशता का दिनदर्शन अपने सहज अभिनय के द्वारा करवाती और कहती है—

पौन तू प्राण मेरो, दासी छौं मैं भी तेरो ।  
जैं दिशा और मेरो, तैं दिशा मारी फेरो ।।

**उपसंहार :-** निष्कर्ष रूप में यह कहना सर्वथा समीचीन है कि गढ़वाली लोक-मानस जीवनानुभूति के विविध आयामों को भोगने और जीने में उतना ही पौरुषमय है, जितना वह जीवन के भौतिक अवरोधों एवं कष्टों को सहन करने के मोर्चा लगाने में। खुदेड़ गीत विरह जीवन के रस से ओत-प्रोत होते हैं। यही कारण है कि उस विरह पीड़ा की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य और अनुभूतिमय आत्म-स्पर्श की प्रभा है। भारतीय संस्कृति इन्हीं तत्त्वों से प्रोद्भासित है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने के उपरान्त यह कहना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि इन खुदेड़ गीतों की वाणी के सफलतम प्रयोग के पुष्कल प्रमाण उपलब्ध हैं। इसके आधार पर यह कहना सर्वथा उपयुक्त

होगा कि गढ़वाली खुदेड़ गीतों की “वाणी एवं करुणा की प्रभावशीलता उसकी वैदग्ध्यजनित चाहना में सन्निहित है।” की सत्यता प्रमाणित की है। गढ़वाली खुदेड़ गीतों में करुणा रूपी वाणी का प्रयोग ऋतु, त्यौहार, धार्मिक कार्य, विरह पीड़ा के माध्यम से किया जाता है उनकी भाषात्मक अभिव्यक्ति में अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना सभी शब्दशक्तियों का प्रभावी प्रयोग किया जाता था।

लोक—जीवन स्वच्छन्दता का जीवन होता है बन्धन लोक—जीवन को प्रिय नहीं होते। गढ़वाली खुदेड़ गीत प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में पलता और बढ़ता है। इसीलिए, गढ़वाली खुदेड़ गीतों में किसी प्रकार की बनावट नहीं होती है। प्रकृति की सुखद गोद गढ़वाली खुदेड़ गीतों का खुला और रागात्मक मंच होता है।

#### सन्दर्भ संकेत :-

1. गढ़वाल के लोकनृत्य गीत (डॉ शिवा नन्द नौटियाल) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग इलाहाबाद प्रकाशन वर्ष 2003.
2. लोक साहित्य एवं गढ़वाली लोक साहित्य हरीश प्रकाशन मंदिर 301 गोल्डन पैलेस (प्रथम तल) अस्पताल मार्ग आगरा—282003 उत्तर प्रदेश।
3. उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश (डॉ राजेन्द्र प्रसाद बलोदी पूर्व प्राचार्य) विनसर पब्लिशिंग कम्पनी देहरादून (उत्तराखण्ड) प्रकाशन वर्ष 2015.
4. टिहरी गढ़वाल (भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य) किशन सिंह रावत विनसर पब्लिशिंग कम्पनी देहरादून (उत्तराखण्ड) प्रकाशन वर्ष 2014.
5. उत्तराखण्ड के रचनाकार और उनका साहित्य (भाग—2)  
प्रधान संपादक — प्रो० देवसिंह पोरबरिया  
संपादक — डॉ जगत सिंह बिष्ट  
अंकित प्रकाशन चन्द्रावली कॉलोनी  
पीलीकोठी हल्द्वानी — 263139 उत्तराखण्ड  
प्रकाशन वर्ष — 2007
6. गढ़वाल का इतिहास (डॉ यशवन्त सिंह कठोच) भागीरथी प्रकाशन गृह आंचलिक साहित्य के प्रकाशन बस अड्डा, बौराड़ी, नयी टिहरी, टिहरी गढ़वाल उत्तराखण्ड प्रकाशन वर्ष— 2007
7. अतीत का सब (प्रो० गंगा प्रसाद 'विमल') वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।



**Mohan Singh**  
Lecturer Hindi.